पुद्गल द्रव्य : एक पर्यवेक्षण

• *उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. के शिष्य श्री रमेश मुनि शास्त्री*

सत्य एक है, अखण्ड है और अनन्त है। पर उस एक मात्र सत्य का निरुपण करने वाले "दर्शन" अनेक हैं। इसलिये, उन सब का प्रतिपादन, भिन्न-भिन्न है, सत्य के सम्पूर्ण स्वरूप का यथार्थ रूप से संकथन करने वाला दर्शन, उसी को माना जा सकता है कि, जिस दार्शनिक ने अपने अतीन्द्रिय अनुभवों का नवनीत अपने निरूपण एवं विवेचन में भरा हो। क्योंकि अतितीव्र तपश्चर्या, गहन आत्मानुभूति जब अपने चरम-उत्कर्ष पर पहुंचती है। तब उस साधक की आत्मा, विराट् विश्व के यथार्थ-स्वरूप पर पड़े आवरण को भेद कर, उसके अणु-अणु पर अपना परम दिव्य प्रकाश अर्थात् ज्ञान विखेर देती है। जिस की सर्वथा निर्मल ज्योति में उसे कण-कण की वास्तविकता दिखलाई पड़ती है। इस प्रखर ज्योति का धारक वह आत्मा, तब सर्वदर्शी, सर्वज्ञानी बन जाता है। इस दिव्य दृष्टि अर्थात् ज्योति के प्रकार में पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का जो "दर्शन" होता है, "दर्शन" शब्द का वही शाब्दिक अर्थ "देखना" स्वीकार करने योग्य है। और इस देखने के बाद, द्रष्टा द्वारा पदार्थ स्वरूप का जो विवेचन किया जाता है। उससे पदार्थों का जो स्वरूप निर्धारिण होता है। वह यथार्थ पूर्ण है।

दर्शन-जगत् में जैन दर्शन का शिरसि शेखरायमाण स्थान है। उस की विचार धारा अध्यात्म प्रधान है, सर्वांगपूर्ण हैं, सुव्यवस्थित है और वैज्ञानिक है, उस की चिन्तन ज्योति ऐसी अप्रतिहत है कि काल की संकीर्ण दीवारें उस की गति को अवरुद्ध नहीं कर सकती। उस ज्योतिर्मयी दिव्य दृष्टि से उद्भूत दर्शन ही वस्तु स्वरूप की यथार्थता का निदर्शक होता है। त्रिकाल अबाधित है, अनन्य है, अपराजेय है और विलक्षण है।

जैन दर्शन ने "द्रव्य" के विषय में गहन चिन्तन एवं सविस्तृत-विवेचन किया है। इस सन्दर्भ में जो चिन्तन और विवेचन की अपनी अनुपम आभा है, दीप्ति है, ज्योति है, उस अक्षय एवं अलौकिक ज्योति से आत्मा भी शुभ्रज्ञान से ज्योतित हो उठता है, प्रकाशमान हो उठता है, अज्ञान का सघन-तिमिर तिरोहित हो जाता है। प्रस्तुत दर्शन ने "द्रव्य" का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। उन के नाम निम्नलिखित हैं। [१]

---

१. क- भगवती सूत्र,श.२५, उद्दे. ५, सूत्र-७४७!
   ख- अनुयोगद्वार सूत्र- द्रव्यं गुण पर्यायनाम, सूत्र-१२४
   ग- उत्तराध्ययन सूत्र- अध्य. २८ गा. ७!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१- धर्मास्तिकाय!
२- अधर्मास्तिकाय!
३- आकाशास्तिकाय!
४- जीवास्तिकाय!
५- पुद्गलास्तिकाय!
६- काल!

इन द्रव्यों का लक्षण एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। द्रव्य वह है, जो निश्चित रूप से सत् है। सत् और द्रव्य इन दोनों का तादात्म्य सम्बन्ध है। जो कुछ है, वह सत् है। जो सत् नहीं है, उस का अस्तित्व भी संभव नहीं है। जो असत् है। वह भी तो असत् रूप से सत् है। संक्षेप में असत् ही सत् हो सकता है। क्योंकि असत् सत् का निषेध है। सर्वथा असत् की परिकल्पना भी संभव नहीं है। जो कल्पना तीत है। उस का असत् रूप से परिबोध भी संभव नहीं है। गुण और पर्याय में भेद-विवक्षा कर के द्रव्य का लक्षण इस प्रकार है -जो गुण पर्यायवान् है, वह द्रव्य है। जो उत्पाद, व्यय और धौव्य से युक्त है, वह सत् है, जो सत् है वह द्रव्य है। जिस में पुर्व पर्याय का विनाश [२] हो, और उत्तर पर्याय का उत्पाद हो, वह द्रव्य है। जो किसी द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण हैं तथा स्वयं निर्गुण हों,[३] वे गुण हैं। अर्थात् जिसमें दूसरे गुणों का सद्भाव न हों, वास्तव में गुण द्रव्य में रहते हैं। जो द्रव्य और गुण इन दोनों के आश्रित रहता है। वह पर्याय है। जो उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है तथा समग्र द्रव्य को व्याप्त करता है। वह पर्याय है। जो समस्त गुणों और द्रव्यों में परिव्याप्त होते हैं। वे पर्यक या पर्याय कहलाते [४] हैं। द्रव्य का जो सहभावी है, वह गुण है, और जो क्रम भावी धर्म है, वह पर्याय है। [५] द्रव्य की परिभाषा में, उत्पाद और व्यय के लिये "पर्याय" शब्द का प्रयोग हुआ है और ध्रौव्य के लिये "गुण" शब्द प्रयुक्त है। द्रव्य में गुण की सत्ता द्रव्य की नित्यता का प्रतीक है और पर्याय द्रव्य की परिवर्तन शीलता को सूचित करता है। द्रव्य की उत्पाद और व्यय की प्रक्रिया सर्वथा नैसार्गिक है।

उक्त षट् द्रव्यों में जीवास्तिकाय जीव है और पाँच द्रव्य अजीव है। यह वर्गीकरण जीव और अजीव के आधार पर हुआ है। रूपी और अरूपी को संलक्ष्य में रख कर जो वर्गीकृत रूप हैं, वह यह है -जिन में, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चारों पाये जाते हैं वे रूपी हैं और वे सडन-गलन, विध्वंसन स्वभाव से समन्वित हैं, इस के विपरीत इन लक्षणों से विहीन द्रव्य के जो पाँच भेद हैं, इनमें पुद्गलास्तिकाय नामक द्रव्य रूपी हैं, रूपी को "मूर्त्त" भी कहा जाता है।

---

२ क- तत्त्वार्थ सूत्र- अ-५ सू- २९
ख- विशेषावश्यक भाष्य-गाथा- २८!

३ क- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २८ गा.६
ख- ततवार्थ सूत्र- अ-५ सू-४!

४ क- नयप्रदीप पत्र-९९!
ख- बृहद् वृत्ति- पत्र- ५५७!
ग- न्यायालोक तत्त्वप्रभा वृत्ति- पत्र २०३!

५. क- पंचास्तिकाय- वृत्ति- १६/३५/१२!
ख- श्लोक वार्तिक- ४/१/३३/६०!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पुद्गल" शब्द एक पारिभाषिक शब्द है। लेकिन रूढ़ नहीं है। इस की व्युत्पन्ति कई प्रकार से की जाती है। पुद्गल शब्द में दो अवयव हैं। पुद् और गल! पुद् का अर्थ है -पुरा होना, या मिलना! और गल का अर्थ है -गलना या मिटना! जो द्रव्य प्रतिपल-प्रतिक्षण मिलता रहे, गलता रहे, बनता रहे, बिगड़ता रहे, टूटता रहे, जुड़ता रहे, वह "पुद्गल" है।[६] पुद्गल ही एक ऐसा द्रव्य है, जो खण्डित भी होता है। और पुनः परस्पर सम्बद्ध भी है। यही पुद्गलास्तिकाय नामक द्रव्य का स्वभाव है, पुद्गल द्रव्य का व्युत्पत्ति-जन्य अर्थ पूर्णतः यथार्थ है।

विराट्-विश्व में पुद्गल ही एक ऐसा द्रव्य है, जिस को छुआ जा सकता है, चखा जा सकता है, सूंघा जा सकता है और देखा जा सकता है। अतः अति स्पष्ट है कि जिस में वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श ये चारों अनिवार्यतः पाये जाते हैं। वह पुद्गल कहलाता है।[७] इसी दृष्टि से "पुद्गल" द्रव्य को रूपी कहा जाता[८] है। वैसे रूपी का अर्थ होता है -मूर्त्त! मूर्त वह है -जो चर्म-चक्षुओं से दृश्यमान हो। मूर्त्त का उक्त अर्थ, संगत नहीं हैं, युक्तिपूर्ण नहीं है। क्योंकि पुद्गल परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि चर्म चक्षुओं से दृष्टि गोचर हो ही नहीं सकता। सूक्ष्य पुद्गल परमाणु तो बहुत दूर, अनन्त-अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के भेल से बना व्यवहार परमाणु भी दृष्टिगोचर नहीं होता।[९] पुद्गल का अतिसूक्ष्य रूप "परमाणु" है। पुद्गल की परिभाषा से सुस्पष्ट है कि यह द्रव्य रूपी है, मूर्तिमान् है। इस का स्वभाव ही हैं -सड़ना और गलना! यह द्रव्य अपने स्वभाव से एक क्षण भी वियुक्त नहीं हो सकता। और इस की यही पहिचान है, और यह अपने स्वभाव में ही परिणमन करता रहता है।

जैसा कि उक्त परिभाषा से अति स्पष्ट है कि पुद्गल के मूलतः चार गुण होते हैं। स्पर्श, रस, गन्ध और स्पर्श, इन चारों के भी बीस भेद होते हैं, यह वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल रूप में किया गया है। वास्तव ये गुण अपने विभिन्न रूपों में गणनातीत है, अगणित हैं। वे समस्त गुण वस्तुतः आदिमान परिणाम हैं।

१ - स्पर्श के आठ भेद हैं, उन को नाम इस प्रकार हैं।

१ - स्निग्ध!	५ - शीत!
२ - रुक्ष!	६ - उष्ण!
३ - मृदु!	७ - लघु!
४ - कठोर!	८ - गुरु!

---

६. क- तत्त्वार्थ राजकार्तिक, अ.५ सू. १ वां २४! आचार्य अलंकदेव
ख - हरिवंश पुराण सर्ग - ७ श्लोक - ३६! आचार्य जिनसेने
ग - तत्वार्थ भाष्ट टीका - अ. ५ सू. १ गणी सिद्धसेन
घ - न्यायकोष पृ. ५०२!

७ - क - भगवती सूत्र - श. १२, उद्दे. ५ सूत्र - ४५०
ख - तत्वार्थ सूत्र अ. ५. सू.२३

८ - क- भगवती सूत्र- श. १० उद्ध-१०!
ख- तत्त्वार्थ सूत्र- अ. ५ स् ४!

९- अनुयोग द्वार सूत्र- सूत्र- ३३०-३४६!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ - रस के पांच प्रकार हैं, वे ये हैं।

१ - मधुर! ३ - कटु!
२ - अम्ल! ४ - तिक्त!
५ - कषायला!

३ - गन्ध के दो प्रकार हैं।

१ - सुरभि गन्ध!
२ - दुरभि गन्ध!

४ - वर्ण के पाँच भेद इस प्रकार हैं।

१ - कृष्ण! ३ - पीत!
२ - रक्त! ४ - श्वेत!
५ - नील!

"पुद्गल" द्रव्य की प्रमुख विशेषता उस के स्पर्श आदि चार गुण ही हैं, ये चारों उस के असाधारण भाव हैं! अर्थात् उस के अतिरिक्त किसी अन्य द्रव्य में संभव नहीं है। ऐसी विशेषताएँ मुख्य रूप से छह कही जा सकती हैं। पुद्गल द्रव्य का जो स्वरूप है, उनका विश्लेषण करना ही इन विशेषताओं का एक मात्र उद्देश्य रहा है।

पुद्गलद्रव्य की परिभाषा हम पहले प्रस्तुत कर चुके हैं। और उसकी कसौटी पर पुद्गल द्रव्य खरा उतरता है। इसे स्पष्टतः समझाने के लिये हम एक उदाहरण देंगे। सुवर्ण पुद्गल है। किसी राजा के एक पुत्र है। और एक पुत्री है। राजा के पास एक सुवर्ण का घड़ा है। पुत्री उस घट को चाहती है। और पुत्र उसे तोड़ कर उस का मुकुट बनवाना चाहता है। राजा पुत्र की हठ पूरी कर देता है। पुत्री रुष्ट हो जाती है। और पुत्र प्रसन्न हो जाता है। लेकिन राजा की दृष्टि केवल सुवर्ण पर है। जो घट के रूप में विद्यमान था और मुकुट के रूप में विद्यमान है, अतएव उसे न हर्ष है, न विषाद है। उस के मन में माध्यस्थ्य भाव है।[१०] एक उदाहरण और लीजिये। लकड़ी एक द्रव्य है और वह पुद्गल द्रव्य है। वह जल कर क्षार हो जाती है उस से लकड़ी रूप पर्याय का विनाश होता है और क्षार रूप पर्याय का उत्पाद है। किन्तु दोनों पर्यायों में पदार्थ का अस्तित्व अचल रहता है, उसके आंगारत्व का विनाश नहीं होता[११] है। उक्त दोनों उदाहरणों में पदार्थ का अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है, वे द्रव्य के ध्रौव्य के प्रतीक हैं। संज्ञान्तर या भावान्तर को पर्याय कहते[१२] हैं। पर्याय का स्वरूप ही चूंकि यह है कि वह प्रतिसमय बदलती रहती है। नष्ट भी होती है और उत्पन्न भी होती है। अतएव उत्पाद और विनाश इन दोनों की प्रतीक है, द्रव्य की इस परिभाषा की दृष्टि से, दोनों उदाहरणों के द्वारा पुद्गलास्तिकाय की द्रव्यता सिद्ध होती है।

१०- आप्त मीमांसा श्लोक-५९ आचार्य समन्तभद्र!

११- मीमांसाश्लोक वार्तिक, श्लोक- २१-२६! कुमारिल भट्ट!

१२- तत्त्वार्थ भाष्य टीका अ.५ सू. ३७ आचार्य सिद्धसेन!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य के भाव अर्थात् एक तत्व को परिणाम कहा जाता है। परिणाम का अभिप्राय यह है कि अपने स्वरूप का परित्याग न करते हुए एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना! निष्कर्ष यह है कि द्रव्य परिणामी होता है। वह परिणामन करता है। इसी को दूसरे शब्दों में यो भी कहा जा सकता है कि जैसे द्रव्य में उत्तर पर्याय का उत्पाद और पूर्व पर्याय का विनाश होता रहता है, किन्तु द्रव्य फिर भी अपने स्वरूप में रहता है। उस का स्वरूप का न विनाश होता है और न ही उस में परिवर्तन होता है। [१३] उस का स्थिरत्व ज्यों का त्यों विद्यमान है। त्रिकाल व्यापी है। अति स्पष्ट है कि द्रव्य का भाव अर्थात् परिणमन 'परिणाम' है। सहज स्वाभाविक रूप में सदा से होने वाला और सदा होता रहने वाला परिणाम है। यह परिणाम जिस को नष्ट न हो, वह वस्तु नित्य है। [१४] और उस की मौलिकता है। पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की मौलिकता स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण में है। ये चार पुद्गल द्रव्य से एक समय के लिये भी विलग नहीं होते हैं। अतएव वह नित्य है, शाश्वत है। यह एक अलग बात है कि यह मौलिकता रूपान्तरित हो जाती है। अपरिपक्व आम्र हरा है, खट्टा है, और वही पक कर पीला होता है। लेकिन वह वर्णहीन एवं रसहीन नहीं हो सकता है। सुवर्ण की चूड़ी को पिघला कर हार बनाया जाता है। लेकिन सुवर्ण फिर भी ज्यों का त्यों रहेगा है, सर्वथारूपेण नित्य रहेगा। जो संख्या में न्यूनाधिक न हो, अनादि भी हो, अनन्त भी हो और जो न स्वयं को अन्य द्रव्य को रूप में परिवर्तन करे, वह वस्तु अथवा द्रव्य अवस्थित कहलाती है। अनादि अतीत काल में जितने पुद्गल परमाणु थे। वर्तमान में उतने ही है। और अनन्त भविष्य में भी उतने ही रहेंगे। पुद्गल द्रव्य की अपनी जो मौलिकता है। वह यथावत् रहेगी। उक्त द्रव्य की अपनी मौलिकता किसी अन्य द्रव्य में कदापि परिवर्तित नहीं होती और नहीं किसी अन्य द्रव्य की मौलिकता पुद्गल नामक द्रव्य में परिवर्तित होती है। यह कथन शत-प्रतिशत यथार्थता लिये हुए है।

पुद्गल द्रव्य की एक अद्वितीय विशेषता है उस का रूप [१५]। यहाँ रूप शब्द का अर्थ है शरीर अर्थात् प्रकृति! जिसमें स्पर्श, रस और गन्ध वर्ण स्वयं सिद्ध [१६] है। पुद्गल का छोटा या बड़ा, दृश्य या अदृश्य कोई भी रूप हो, उस में स्पर्श, रस आदि चारों गुण अवश्यभावी है। [१७] ऐसा नहीं है कि किसी पदार्थ में केवल रूप या गन्ध आदि पृथक्-पृथक् हों, जहाँ स्पर्श आदि में से कोई एक भी गुण होगा, वहाँ अन्य गुण प्रगट या अप्रगट रूप में अवश्य रूप से विद्यमान होंगे।

पुद्गल सक्रिय है, शक्तिमान है। पुद्गल द्रव्य में क्रिया होती है। इसी क्रिया को परिस्पन्दन कहते हैं। यह परिस्पन्दन अनेक प्रकार का होता है। [१८] पुद्गल में यह परिस्पन्दन स्वतः भी होता है और दूसरे पुद्गल या जीव द्रव्य की प्रेरणा से भी होता रहता है। परमाणु की गति क्रिया की एक विशेषता है कि वह

१३- क- तत्त्वार्थ सूत्र अ. ५ सूत्र ४१!
ख- प्रज्ञापना परिणाम पद १३, सूत्र १८१

१४- क- भगवती सूत्र, शत-१४ उद्धे ४ सू. ५१२
ख- तत्त्वार्थ सूत्र, अ.५ सू. ३०!

१५- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २८ गाथा-१२!

१६- सर्वार्थसिद्धि- अ. ५ सू.५ आचार्य पूज्यपाद

१७- भगवती सूत्र- श. ७! उद्दे १०!

१८- भगवती सूत्र, शतक- ३ उद्देशा- ३ टीका आचार्य अभय देन!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रतिघाती होती है। वह वज्र और पर्वत के इस पार से उस पार भी निकल जा सकता है। पर कभी कभी एक परमाणु दूसरे परमाणु से टकरा भी सकता है। पुद्गल में, अनन्त शक्ति भी होती है। एक परमाणु यदि तीव्र गति से गमन करे तो काल के सब से छोटे अंश अर्थात् एक समय में वहलोक के एक छोर से दूसरे छोर तक जा सकता है।

पुद्गल द्रव्य लोक में अवस्थित है, लोक से बाहर नहीं है। लोक के प्रदेश, असंख्यात ही होते हैं। जबकि पुद्गल द्रव्य ही केवल अनन्त अनन्त प्रदेशात्मक है। अब विचारणीय प्रश्न उठता है कि अनन्त-अनन्त पुद्गल असंख्यात प्रदेश वाले लोक में कैसे स्थित हैं। जब कि एक प्रदेश, आकाश का वह अंश है, जिस से छोटा कोई अंश संभव ही न हो? उक्त प्रश्न का समाधान यह है कि सूक्ष्म परिणमन और अवगाहन शक्ति के कारण परमाणु और स्कन्ध सभी सूक्ष्मरूप परिणत हो जाते हैं। और इस प्रकार एक ही आकाश-प्रदेश में अनन्त-अनन्त पुद्गल रह जाते हैं। उक्त विषय को स्पष्टतया समझाने के लिये एक भावपूर्ण उदाहरण है- एक कक्ष में एक प्रदीप का प्रकाश पर्याप्त रूप से व्याप्त है। उस में एक शतक दीपकों का प्रकाश भी सहज रूपेण समा सकता है। अथवा एक दीपक का प्रकाश, जो किसी बड़े कक्ष में फैला रहता है, किसी छोटे से भाजन से ढंक जाने पर, उसी में समा जाता [१९] है। उक्त कथन से अति स्पष्ट है कि पुद्गल के प्रकाश-परमाणुओं में सूक्ष्म परिणमन शक्ति विद्यमान है। उसी प्रकार पुद्गल के प्रत्येक परमाणु की स्थिति है। परमाणु की भांति स्कन्धों में भी सूक्ष्म परिणमन और अवगाहन शक्ति होती है। अवगाहन शक्ति के कारण परमाणु या स्कन्ध जितने स्थान में स्थिति होता है, उतने ही, उसी स्थान में अन्य परमामु और स्कन्ध भी रह सकते हैं। सूक्ष्म परिणमन की क्रिया का अर्थ ही यह हुआ कि परमाणु में संकोच हो सकता है, उस का घन फल, न्यून भी हो सकता है।

पुद्गल द्रव्य का जीव द्रव्य के साथ संयोग भी होता है। यह संयोग दो प्रकार का है -प्रथम अनादि है और द्वितीय सादि है। सम्पूर्ण जीव द्रव्यों का संयोग पुद्गल-परमाणुओं के साथ अनादि काल से है। या था। इस अनादि संयोग से मुक्त भी हुआ जा सकता है। मुक्त जीव को यह संयोग फिर से कदापि नहीं होता, लेकिन मुक्त या बद्ध जीव को यह प्रतिक्षण होता है, व मिटता रहता है। इसी होने-मिटने वाले संयोग को सादि कहा जाता है। यह संयोग क्यों होता है? इस प्रश्न के दो उत्तर हैं -जहाँ तक अनादि संयोग का प्रश्न है। उस का कोई उत्तर नहीं। जब से जीव का अस्तित्व है, तभी से उस के साथ पुद्गल परमाणुओं का संयोग भी है। जिस सुवर्ण को अभी खान से निकाला ही न गया हो, उस के साथ धातु, मिट्टी आदि का संयोग कब से है। इस का कोई उत्तर नहीं। जब से सोना है, तभी से उस के साथ धातु, मिट्टी आदि का संयोग भी है। यह बात दूसरी है कि सोने को उस धातु, मिट्टी आदि से मुक्त किया जा सकता है। उसी तरह जीव द्रव्य भी स्वयं के पुरुषार्थ से अपने को कार्मण वर्गणा से मुक्त कर सकता है। इधर, जहाँ तक सादि संयोग का प्रश्न है, इस का उत्तर दिया जा सकता है। अनादि संयोग के वशीभूत होकर जीव नाना प्रकार का विकृत परिणमन करता है। और इस परिणमन को निमित्त के रूप में पाकर पुद्गल परमाणु अपने आप ही कार्मण-वर्गणा के रूप में परिवर्तित होकर तत्काल जीव से संयुक्त हो जाते हैं। संयोग के बनने-मिटने की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, गतिशील है, जब तक जीव द्रव्य स्वयमेव अपने विकृत परिणमन से मुक्त नहीं हो जाता है। उससे छुटकारा नहीं पा लेता है।

---

१९ - क- राजप्रश्नीय सूत्र. सूत्र-७४!
ख- तत्त्वार्थ सूत्र- अ.५ सू.१६!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य के संयोग की इस प्रक्रिया की यह विशेषता है कि वह संयुक्त होकर भी पृथक-पृथक होती है। जीव की प्रक्रिया जीव में और पुद्गल की प्रक्रिया पुद्गल में ही होती है। एक ही प्रक्रिया दूसरे में कदापि संभव नहीं है। और इस प्रकार एक की प्रक्रिया दूसरे के द्वारा संभव नहीं है। जीव की प्रक्रिया जीव के द्वारा ही, और पुद्गल की प्रक्रिया पुद्गल के ही द्वारा सम्पन्न होती है। लेकिन इन दोनों प्रक्रियाओं में से ऐसी कुछ समता, एक रूपता रहती है कि जीव द्रव्य कभी पुद्गल की प्रक्रिया को अपनी ओर कभी अपनी प्रक्रिया को पुद्गल द्रव्य की मान बैठता है। जीव की यही भ्रान्त मान्यता मिथ्यात्व है, अज्ञान रूप है। [२०]

जीव और पुद्गल की इस संयोग प्रक्रिया के फलस्वरूप ही जीव और अजीव, पुद्गल आदि के अतिरिक्त शेष तत्वों की सृष्टि होती है। कुल मिलाकर नव तत्व इस प्रकार हैं। [२१]

१ - जीव तत्व!
२ - अजीव तत्व!
३ - पुण्य तत्व!
४ - पाप तत्व!
५ - आश्रव तत्व!
६ - बन्ध तत्व!
७ - संवर तत्व!
८ - निर्जरा तत्व!
९ - मोक्ष तत्व!

उक्त तत्वों में पाँचवां तत्व "आश्रव" है। जीव से पुद्गल द्रव्य के संयोग का मूलभूत कारण है, जीव की मनसा, वाचा और कर्मणा होने वाली विकृत परिणति और इसी विकृत [२२] परिणति का नाम "आश्रव" [२३] तत्व है। [२४] जो परिणति अर्थात् भाव रागादि से सहित है, वह बन्ध कराने वाला है। और जो भाव रागादि से रहित है। वह बन्ध करने वाला नहीं है। जीव के साथ कर्म पुद्गल परमाणुओं का बन्ध जाना बन्ध है। अथवा कर्म प्रदेशों का आत्मा प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध [२५] है। जीव प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध को योग से तथा स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध को कषाय से करता [२६] है। संक्षेप में कहा जाय तो कषाय ही "कर्मबन्ध" का मुख्यं हेतु [२७] है। कषाय के चार भेद हैं -क्रोध,

---

२०- पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, श्लोक नं. १२! आचार्य अमृत चन्द्र

२१- क- स्थानांग सूत्र, स्थान- ९ सूत्र. ६६५!
ख- उत्तराध्ययन सूंत्र- अ- २८ सूत्र. १४!

२२- भगवती सूत्र- श. १६ उ.१ सूत्र. ५६४!

२३- क- समवायांग सूत्र-समवाय-५
ख- सर्वार्थ सिद्धि- ६/२ !
ग- सूत्र कृतांग कृत्ति- २/५-१७ आचार्य शीलांग !
घ- अध्यात्म सार- १८/१३१!

२४- समय सार- १६७!

२५- राजवार्तिकि १, ४, १७!

२६- पंचम कर्म ग्रन्थ- गाथा- ९६!

२७- क- स्थानांग सूत्र- स्थान २ ! उद्दे.-२
ख- प्रज्ञापना पद- २६ सूत्र- ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान, माया और लोभ। [२८] संक्षेप में कषाय के दो भेद हैं -राग और द्वेष! उक्त दोनों भेदों को ही भावकर्म माना [२९] है। रागात्मक भाव एवं द्वेषात्मक भाव स्वरूप, जिस से ज्ञानावरणादि कर्म बन्धते हैं, वह परिणाम भाव बन्ध है और आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर वस्तुतः मिल जाना द्रव्य बन्ध है। [३०] आश्रव और बन्ध इन दोनों में कारण कार्य का सम्बन्ध है। आश्रव कर्म बन्ध के लिये भूमिका का निर्माण करता है। बन्ध आश्रव पर निर्भर है। प्रथम क्षण में कर्म स्कन्धों का जो आगमन है, वह तो आश्रव है। और कर्म स्कन्धों के आगमन के बाद, द्वितीय क्षण में उन कर्म स्कन्धों का जीव प्रदेश में स्थित हो जाना बन्ध है। इस भेद से आश्रव और बन्ध इन दोनों की स्थिति, वस्तुतः स्पष्ट हो जाती है।

बन्ध तत्व के अन्तर्गत यह ध्यान देने की बात है कि पुद्गल परमाणु अर्थात् कार्मण वर्गणाएँ जीव द्रव्य में प्रविष्ट हो जाते हैं। अन्तर्लीन हो जाते हैं। जीव द्रव्य के साथ कार्मणवर्गणाएँ अपना एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। अर्थात् आकाश के जिस और जितने प्रदेशों में जीव स्थित होता है। अपनी सूक्ष्म परिणमन शक्ति के बल पर ठीक उन्हीं और उतने ही प्रदेशों में उस से सम्बन्धित कार्मण-वर्गणाएँ भी अवस्थित हो जाया करती हैं। इस स्थिति अर्थात् एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि वे दोनों एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। इस सम्बन्ध के रहते हुए भी जीव, जीव ही रहता है और पुद्गल पुद्गल ही रहता है। दोनों द्रव्य अपने-अपने मौलिक गुणों का एक समय के लिये भी किंचित् मात्र भी नहीं छोड़ते हैं।

जीव अपने ही पुरुषार्थ से निरन्तर संयुक्त होती रहने वाली कार्मण-वर्गणाओं पर रोक लगा सकता है। और यही रोक संवरतत्व कहलाती है। [३१] संवर का कार्य है कर्मों का संयमन करना। यह आश्रव का विरोधी है। दूसरे शब्दों में संवर कर्मों के आश्रव को रोक लेता है। यह दो प्रकार का है [३२]

२८- क- सूत्रकृतांग सूत्र- ६/२६!
ख- स्थानांग सूत्र- ४/१/२५१!
ग- प्रज्ञापना सूत्र- २३/१/२८०!

२९- क- उत्तराध्ययन सूत्र- ३२/७
ख- समय सार- ए ४/ए ६/१० ए/१७७!
ग- प्रवचन सार- १/८४/८८!

३०- क- द्रव्य संग्रह- ३२!
ख- प्रवचन सार- ८३- ८४!
ग- सर्वार्थसिद्धि- १, ४!

३१ क- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २ए गा. ११!
ख- सप्ततत्त्व प्रकरणम् ११८ -११२!
ग- योगशास्त्र -७६!

३२ क- स्थानांग सूत्र, टीका २/१४!
ख- द्रव्य संग्रह -२/३४!
ग- सर्वर्थसिद्धि -९/१!
घ- सप्ततत्त्व प्रकरणम् -११२
ङ- पंचास्तिकाय -२/४२!
अमृतचन्द्रवृत्ति!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव संवर और द्रव्य संवर! जो चेतन का परिणाम कर्म के योग और आश्रव को रोकने में कारण है। वह भाव संवर है। और जो वस्तुतः कर्मों का अवरोध करता है, वह द्रव्य संवर है। भाव संवर कारण है और द्रव्य संवर कार्य है।

इसी प्रकार जीव अपनी पूर्वसंयुक्त कार्मण-वर्गणाओं को क्रमशः निर्जीण या दूर भी कर सकता है। और यही निर्जरा तत्व है "निर्जरा" शब्द "जृ" धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका स्पष्टतः अर्थ होता है -जीर्ण होना, विनष्ट होना। यह शब्द कर्मों के क्रमिक विनाश को इंगित करता है। अतएव एक देश रूप से, आत्मा से कर्मों का छूटना "निर्जरा" है। वह दो प्रकार की है -विपाकज और अविपाकज! जहाँ कर्म पक कर निर्जीर्ण होते हैं वह विपाकज निर्जरा है। और तप आदि से जब कर्मों की निर्जरा की जाती है तो वह अविपाकज निर्जरा है। इसे क्रमशः द्रव्य निर्जरा और भाव निर्जरा भी कहते हैं। बीज फल के रूप में वृद्धिंगत होता है। यदि वह स्वयं पक जाता है। तो वह विपाक कहलाता है। परन्तु यदि उस को अपक्व स्थिति में ही तोड़ लिया जाये और फिर उसे कृत्रिम साधनों के द्वारा पकाया जाये तो वह अविपाक निर्जरा है। आत्मा से कर्म रूपी पुद्गलों का फल देकर नष्ट हो जाना "निर्जरा" है। निर्जरा का प्रमुख साधन "तप" है। वह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। इन दोनों के छह-छह भेद हैं [३३] कुल मिलाकर तप के बारह प्रकार होते हैं। आभ्यन्तर तप की उत्कृष्टता की तुलना में, बाह्य तप की साधना का भी विशेष महत्व है। आभ्यन्तर तप की जिन उर्ध्वगामी तपस्या का फल हमें मोक्ष रूप में मिलने का ज्ञात होता है, उस उत्क्रान्ति का सारा का सारा भार बाह्य तप की सर्वथा सफल साधना पर निर्भर है। यह कथन पूर्णतः यथार्थ है।

अपनी कार्मण-वर्गणाओं से सदा के लिये पूर्ण रूपेण मुक्त हो जाना जीव का मोक्ष कहलाता है। 'मोक्ष' शब्द "मोक्ष असने" धातु से भाव अर्थ में धञ् प्रत्यय होने पर निष्पन्न होता है। जिस का अर्थ होता है -आत्मा से बन्धे हुए समस्त कर्मों को समूलतः फेंक देना! जिन उपायों से मोक्ष यानी कर्मों के बन्धनों से छुटकारा मिलता है, उन प्रयासों की अपेक्षा से करण की प्रधानता की ध्यान में रखते हुए "छुटकारा मात्र को मोक्ष कहा गया है। जब आत्मा आठों प्रकार के कर्मों के मल कलंक से और अपने शरीर से, अपनी आत्मा को अलग कर देता है, तब उस के जो अचिन्तनीय, फिर भी स्वाभाविक ज्ञान आदि गुणों रूप और अव्याबाध सुख रूप, सर्वथा विलक्षण जो अवस्था उत्पन्न होती है। उसे मोक्ष कहते हैं। [३४] इन

---

३३ क- भगवती सूत्र पू. २५ उद्दे. ७ सू. १८७, २१७!
ख- उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३० गाथा -८,३०।
ग- स्थानांगसूत्र स्थान ६, सूत्र ५५१!
घ- मूलाचार-गाथा ३४६,३६०!
ङ- प्रवचन सारोद्धार -२७०-२७२!
च- औपपातिक सूत्र -३०!
छ- भगवती आराधना - २०८
ज- चारित्र सार -१३३!
झ- सर्वार्थसिद्धि -९/१९
ञ- समवायांग सूत्र, समवाय -६ अभयदेव वृत्ति!

३४ क- परमात्म प्रकाश -२/१०! ख- ज्ञानार्णव ३/६-१०!
ग- नियम सार, तात्पर्याख्यावृत्ति -४!
घ- द्रव्य संग्रह टीका -३७!
ङ- सर्वार्थसिद्धि १/१ की उत्थानिका आचार्य पूज्यपाद!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभाषाओं के पर्यवलोकन से यह अति स्पष्ट हो जाता है कि इनमें मोक्ष के जिस स्वरूप पर बल दिया गया है, वह है आत्मा के अपने विशुद्ध और मौलिक स्वरूप की प्राप्ति है। ये परिभाषाएँ वास्तव में आत्मा के स्वभाविक अवस्था की विवेचना का सूत्र रूप है। इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि सम्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को संयुक्त रूप में मोक्ष का मार्ग बताया है।[३५] ये तीनों मार्ग पृथक्-पृथक् नहीं है, अपितु समवेत रूप में कार्यकारी होते हैं। यह तीनों सम्मिलित रूप से अथवा मिलकर मोक्ष मार्ग किं वा मोक्ष प्राप्ति का साधन बनते हैं। विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य बात है कि इन तीनों सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में से पृथक्-पृथक् कोई भी एक अथवा दो, मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा सकते हैं, तीनों का साहचर्य नितान्त आवश्यक है।

पुद्गल क्या है? हम यह स्पष्ट रूपेण जान चुके हैं कि वह एक द्रव्य है। उस के परमाणु-परमाणु में प्रति समय उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य की अखण्ड प्रक्रिया वर्तमान है। इस प्रक्रिया की दृष्टि से, जितने भी पुद्गल हैं, चाहे वे परमाणु -के रूप में हो, चाहे स्कन्ध के रूप में हो, सब एक समान है। उन में भेद या वर्गीकरण को अवकाश ही नहीं है। अतएव हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि द्रव्य दृष्टि से पुद्गल का केवल एक ही भेद है, या यों कहिये कि वह अभेद है। पुद्गल का अधिक सरल वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है -जिस से पुद्गल का स्वरूप अति स्पष्ट होता है।

प्रथम वर्गीकरण "परमाणु" है।

द्वितीय वर्गीकृत रूप "स्कन्ध" है।

१ - परमाणु पुद्गल का वह सूक्ष्मतम अंश है। परमाणु अनन्त-अनन्त है। किन्तु उन में पार्थिव, जलीय, तैजस् और वायवीय जैसा कोई भेद नहीं है। ये तो, जैसा सहकारी वातावरण पाते हैं। स्वयं को तत्तत् रूप में बदल देते हैं। यानी जो परमाणु एक बार पार्थिव रूप में बदला है। वही परमाणु, दूसरी बार जलीय, वायवीय या तैजस् रूप में भी बदल सकता है। इसी दृष्टि से एक परमाणु में वर्ण, गन्ध, स्पर्श, और रस की शक्तियाँ भी एक साथ समाहित रहती है। ये शक्तियाँ, प्रत्येक परमाणु में समान रूप से विद्यमान है और सामग्री के सहकारी के अनुरूप परिणाम को प्राप्त होती है। क्योंकि रस आदि गुणों को "रूप" के साथ अविनाभावी माना गया है।[३६] यानी जिस परमाणु में रूप होगा, उस में रस, वर्ण, और स्पर्श भी निश्चित रूप से पाया जायेगा।

परमाणु के संघात से उत्पन्न होने वाले स्कन्ध आदि परमाणु से कुछ अंश में भिन्न है और कुछ अंश में अभिन्न है। भिन्न इसलिये होते हैं कि यह परमाणुओं का एक समूह होता है। अतएव प्रत्येक परमाणु का उस में अपना पृथक् अस्तित्व रहता है। परमाणु वह सूक्ष्मतम अंश है। जिस का पुनः अंश हो नहीं सकता। परमाणु का कदापि विभाजन नहीं किया जा सकता। अतएव वह अछेद्य, अभेद्य, अग्राह्य,

---

३५. क- तत्वार्थ सूत्र अ. १ सू. १ वाचक उमास्वाति
ख- समयसार ४, १०!
ग- स्थानांग सूत्र -३, ४, १९४
घ- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २८ गा. १-३
ङ- आवश्यक निर्युक्ति गाथा -१०३! आचार्य भद्रबाहु!

३६ सर्वार्थ सिद्धि -५/५!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदाह्य और निर्विभागी [३७] है। परमाणु यदि अविभाज्य न हो तो उसे परम + अणु नहीं कहा जा सकता। इसी सन्दर्भ में परमाणु द्विविधता का सहज स्मरण हो आता है। परमाणु के दो भेद [३८] ये हैं।

१ - सूक्ष्म परमाणु! २ - व्यावहारिक परमाणु !

सूक्ष्म परमाणु का स्वरूप वहीं है, जो कुछ ऊपर की पंक्तियों में निर्दिष्ट हैं। व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के समुदय से बनता [३९] है। वस्तुवृत्या वह स्वयं परमाणुपिण्ड है। फिर भी सामान्य दृष्टि से ग्राह्य नहीं होता और उस को अस्त्र-शस्त्र से तोड़ा नहीं जा सकता। उस की परिणति सूक्ष्म होती है। इसलिये व्यवहारतः उसे परमाणु कहा गया है। सूक्ष्म परमाणु द्रव्य रूप से निरवयव और अविभाज्य होते हुए भी पर्याय की दृष्टि से वैसा नहीं [४०] है। उक्त तथ्य वस्तुतः महत्त्वपूर्ण है। उस में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चार गुणों, गुणों के अतिरिक्त अनन्त पर्याय होते [४१] हैं। पर्याय की दृष्टि से एक गुण वाला परमाणु अनन्त गुणवाला हो जाता है। अनन्त गुण वाला परमाणु एक गुण वाला है। एक परमाणु में वर्ण से, वर्णान्तर, गन्ध से गन्धान्तर, रस से रसान्तर और स्पर्श से स्पर्शान्तर हो जाता है। एक गुण वाला पुद्गल यदि उसी रूप में रहे तो जघन्यतः एक और उत्कृष्टतः असंख्य काल तक रहता है। [४२] द्विगुण से लेकर अनन्त गुण तक के परमाणु पुद्गल के लिये यह नियम है। बाद में, उन में परिवर्तन अवश्य होता है। यह वर्ण विषयक नियम गन्ध, रस व स्पर्श पर भी घटित होता है।

यह कथन पूर्णतः यथार्थ है कि परमाणु इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होता। तथापि अमूर्त्त नहीं है। वह मूर्त्त है, रूपी है। पारमार्थिक दृष्टि से वह देखा जाता है। परमाणु मूर्त्त होते हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होता, इसका प्रमुख कारण उस की सूक्ष्मता है। केवल ज्ञान का विषय मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों प्रकार के पदार्थ हैं। इसलिये केवली तो परमाणु को जानते [४३] ही हैं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला व्यक्ति परमाणु को नहीं जान सकता [४४]। परमाणु में कोई एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श अर्थात् स्निग्ध अथवा रुक्ष, शीत या ऊष्ण होते [४५] हैं। अणु के अस्तित्व का परिज्ञान, उस से निर्मित पुद्गल स्कन्ध रूप कार्य से होता है। परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि उस के आदि, मध्य और अन्त का प्रश्न ही नहीं उठता [४६] है। अणु का वर्गीकरण चार प्रकार से हुआ है, वे चार वर्ग इस प्रकार [४७] हैं।

---

३७. क- भगवती सूत्र -५/७!
ख- स्थानांग सूत्र स्थान -४!

३८ अनुपयोग द्वार सूत्र, प्रमाणाधिकार सूत्र -३४०!

३९ अनुयोग द्वार सूत्र -प्रमाणाधिकार सूत्र -१३४२!

४० प्रज्ञापना सूत्र पद -५

४१ स्थानांग सूत्र, स्थान -४!

४२ भगवती सूत्र ७/७!

४३ नन्दी सूत्र, सूत्र -२२!

४४ भगवती सूत्र -१८/८

४५ तत्त्वार्थ राज कार्तिक अ. २ सू. २५ आचार्य अकलंकदेव!

४६ तत्त्वार्थ राजवार्तिक - अ. ५ सू. २५ वां -१

४७ भगवती सूत्र २०/५/१२!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ - द्रव्य परमाणु - पुद्गल परमाणु!
२ - क्षेत्र परमाणु - आकाश प्रदेश!
३ - काल परमाणु - समय!
४ - भाव परमाणु - गुण !

चतुर्थ प्रकार भाव अणु के मूल भेद चार हैं। [४८] और सोलह उपभेद [४९] होते हैं।

परमाणु-पुद्गल अनर्घ, अमध्य और अप्रदेश होते हैं। परमाणु सकम्प भी होता है और वह अकम्प भी है। कदाचित् वह चंचल होता है, कदाचित् नहीं भी है। उन में न तो निरन्तर कम्प भाव रहता है और न निरन्तर अकम्प भाव भी है। इसी सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि परमाणु स्वयं गतिशील है। वह एक क्षण में लोक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो असंख्य योजन की दूरी पर है। चला जाता है। गति-परिणाम उस का स्वभाव धर्म है। धर्मास्तिकाय उस का प्रेरक नहीं है, सहायक है। गति का उपादान परमाणु स्वयं है। धर्मास्तिकाय तो उस का निमित्तमात्र है।

यह दृश्यजगत् - पौद्गलिक जगत् परमाणु संघटित है। परमाणुओं से स्कन्ध बनते हैं। और स्कन्धों से स्थूल पदार्थ निर्मित होता है। पुद्गल में संघातक और विघातक ये दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं। पुद्गल शब्द में "पूरण और गलन" इन दोनों का मेल है। परमाणु के मेल से स्कन्ध बनता है। और एक स्कन्ध के टूटने से भी अपने स्कन्ध बन जाते हैं। यह गलन और मिलन की प्रक्रिया स्वाभाविक भी होती है और प्राणी के प्रयोग से भी है। कारण कि पुद्गल की अवस्थाएँ सादि, सान्त, होती है, अनादि अनन्त नहीं! पुद्गल में यदि वियोजक शक्ति नहीं होती तो सब अणुओं का एक पिण्ड बन जाता है और यदि संयोजक शक्ति नहीं होती, तो एक-एक अणु अलग-अलग रह कर कुछ नहीं कर पाते। प्राणी जगत् के प्रति परमाणु का जितना कार्य है, वह सब परमाणु समुदयजन्य है।

स्कन्ध की परिभाषा इस प्रकार हुई है -दो या दो से अधिक परमाणुओं का पिण्ड "स्कन्ध" कहलाता है। स्कन्धों को तीन वर्गों में रखा जाता है। [५०]"स्कन्ध" अनेक परमाणु जब एक समुदाय में आकर परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। तब वे स्कन्ध कहलाने लगते हैं। स्कन्ध का खण्ड भी स्कन्ध कहलाता [५१] है। स्कन्ध का कोई भी अंश या खण्ड, जो अपने अंगी से पृथग्भूत नहीं हो वह स्कन्ध देश कहा जाता है। स्कन्ध या स्कन्ध देश का एक परमाणु जो अपनी अंगी से पृथग्भूत न हो, स्कन्ध प्रदेश कहलाता है। अथवा पुद्गल के परमाणु और स्कन्ध के रूप में दो भेद होते हैं। लेकिन ग्राह्य और अग्राह्य के रूप में भी दो भेद संभव है। पुद्गल के जो परमाणु जीव द्रव्य से संयुक्त होते हैं। उन्हें ग्राह्य कहा जाता है। ग्राह्य पुद्गलों के अतिरिक्त शेष सभी अग्राह्य हैं, उन्हें जीव ग्रहण नहीं करता है। जीव से उन का संयोग नहीं होता है। प्रवाह की अपेक्षा से स्कन्ध और परमाणु ये दोनों अनादि है, अपर्यवसित हैं। कारण यह है कि इन की सन्तति अनादि काल से चल रही है और चलती रहेगी। स्थिति की अपेक्षा से यह सादि सपर्यवसान भी है। इसी सन्दर्भ में यह एक ज्ञातव्य तथ्य है कि स्कन्ध द्रव्य की दृष्टि से सप्रदेश

---

४८ भगवती सूत्र २०/५/१६!

४९ भगवती सूत्र २०/५/१!

५० भगवती सूत्र, अं. ५ सूत्र- २६!

५१. तत्वार्थ सूत्र, अ. ५. सूत्र २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। जिस स्कन्ध में जितने परमाणु होते हैं। वह तत्परिमाण प्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। क्षेत्र की अपेक्षा से सप्रदेशी भी है और अप्रदेशी भी है। जो एक आकाश प्रदेशावगाही होता है, वह अप्रदेशी है और जो दो आदि आकाश-प्रदेशावगाही होता है। वह सप्रदेशी है। काल की अपेक्षा से जो स्कन्ध एक समय की स्थिति वाला होता है, यह अप्रदेशी और जो इस से अधिक स्थिति वाला होता है, वह सप्रदेशी है। भाव की दृष्टि से एक गुण वाला अप्रदेशी और अधिक गुणवाला सप्रदेशी है। यह स्पष्ट लक्ष्य है कि अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी जब तक सूक्ष्म परिणति में रहता है, तब तक इन्द्रिय ग्राह्य नहीं बनता है। और सूक्ष्म परिणति वाले स्कन्ध चतुःस्पर्शी होते हैं। उत्तरवर्ती चार स्पर्श बादर परिणाम वाले चार स्कन्धों में ही होते हैं। गुरु-लघु और मृदु कठिन ये स्पर्श पूर्ववर्ती चार स्पर्शों की अपेक्षा पूर्ण संयोग से बनते हैं। रुक्ष स्पर्श की बहुलता से लघु स्पर्श होता है और स्निग्ध की बहुलता से गुरु-स्पर्श होता है। शीत और स्निग्ध इन दोनों स्पर्शों की बहुलता से मृदु स्पर्श और ऊष्ण तथा रुक्ष की बहुलता से कर्कश स्पर्श बनता है। तात्पर्य की भाषा में स्पष्ट रूपेण कहा जा सकता है कि सूक्ष्म परिणति की विकृति के साथ-साथ जहाँ स्थूल परिणति होती है। वहाँ चार स्पर्श भी बढ़ जाते हैं।

पुद्गल द्रव्य परिणमनशील है। उस में परिणमन स्वयंमेव होता है। जीव के संयोग से भी होता है। इसी दृष्टि को लेकर उस के तीन भेद संभव [५२] है।

१ - प्रयोग -परिणत ऐसे पुद्गलों की प्रयोग परिणत कहते हैं। जिन्होंने जीव के संयोग से अपना परिणमन किया है।

२ - विस्रसा-परिणत-विस्रसा परिणत ऐसे पुद्गलों को कहते हैं, जो अपना परिणमन स्वतः किया करते हों, जीव का संयोग ही जिन से न हुआ हो।

३ - मिश्र परिणत - ये वे पुद्गल हैं, जिन का परिणमन जीव के संयोग से और स्वयंमेव, दोनों प्रकार से एक ही साथ रहा होता है। मिश्र परिणत पुद्गल उन्हें भी कहा जा सकता है, जिन का परिणमन कभी जीव के संयोग से हुआ हो, लेकिन अब किन्ही कारणों से जो स्वयंमेव अपना परिणमन कर रहे हैं।

अपेक्षा दृष्टि से पुद्गल के दो भेद भी हैं, [५३] तीन भेद भी हैं, और परमाणु का एक भेद मिलकर पुद्गल के चार भेद भी हो जाते [५४] हैं। ये भेद अपेक्षा-विशेष से हुए हैं। द्रव्य दृष्टि से पुद्गल एक ही भेद हैं, अथवा यों भी कहा जा सकता है कि वह वस्तुतः अभेद ही है।

परमाणु और स्कन्ध के रूप में हम ने पुद्गल का अध्ययन किया और हम स्पष्टतया उस का अध्ययन अन्य रूप में देखेगें परमाणु सूक्ष्म है। और अचित्त महास्कन्ध स्थूल है। इन के मध्यवर्ती सौक्ष्म्य और स्थोल्य ये दोनों आपेक्षित भेद हैं। एक स्थूल वस्तु की अपेक्षा, किसी दूसरी वस्तु को सूक्ष्म और एक

---

५२ भगवती सूत्र -८/१/१!

५३ क- उत्तराध्ययन सूत्र -३६/११!
ख- स्थानांग सूत्र -स्थान -२!

५४ ५४ -भगवती सूत्र -२/१०/६६!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म वस्तु की अपेक्षा किसी दूसरी वस्तु को स्थूल कहा जाता है। स्थूलता और सूक्ष्मता के आधार पर पुद्गल को छह वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये छहों भेद स्कन्ध को दृष्टि में रखते हुए किये [५५] गये हैं।

१ - स्थूल-स्थूल लकड़ी, पत्थर आदि जैसे ठोस पदार्थ इस वर्ग में आते हैं।

२ - स्थूल- इस वर्ग में जल, तेल आदि द्रव्य पदार्थ आते हैं।

३ - स्थूल -सूक्ष्म - प्रकाश, छाया, अन्धकार आदि जैसे दृश्य पदार्थ इस वर्ग में आते हैं।

४ - सूक्ष्म -स्थूल ऐसे पदार्थ इस वर्ग में आते हैं। जिन्हें हम नेत्र इन्द्रिय से तो नहीं जान पाते, लेकिन शेष चारों में से किसी न किसी इन्द्रिय द्वारा अवश्य जान सकते हैं।

५ - सूक्ष्म - शास्त्रीय भाषा में जिन्हें कार्मणवर्गणा कहते हैं। उन पुद्गलों को इस वर्ग में रखा गया है। ये वे सूक्ष्म हैं। पर स्कन्ध अवश्य है। जो हमारी विचार-क्रिया जैसी क्रियाओं के लिये अनिवार्य है। हमारे विचारों और भावों का प्रभाव इन पर पड़ता है। तथा इन का प्रभाव जीव द्रव्य एवं अन्य पुद्गलों पर पड़ता है।

६ - सूक्ष्म -सूक्ष्म - कर्मवर्गणा से भी अति सूक्ष्म!

एक अन्य दृष्टि से पुद्गल के तेवीस भेद भी किये जाते हैं। [५६] इन भेदों को शास्त्रीय भाषा में वर्गणाएँ कहते हैं। उन में से आठ मुख्य वर्गणाएँ हैं, और इन के अनेक उपभेद [५७] भी होते हैं। अष्ट विधि वर्गणाएँ इस प्रकार हैं।

१ - औदारिक वर्गणा!
२ - वैक्रिय वर्गणा!
३ - आहारक वर्गणा!
४ - तेजस् वर्गणा!
५ - कार्मण वर्गणा!
६ - श्वासोच्छ्वास वर्गणा!
७ - भाषा वर्गणा!
८ - मनो वर्गणा!

१ - औदारिक वर्गणाए - स्थूल पुद्गल - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसजीवों के शरीर निर्माण योग्य पुद्गल समूह!

२ - वैक्रिय वर्गणा - छोटा बड़ा, हल्का भारी, दृश्य-अदृश्य आदि विविध क्रियाएँ करने में समर्थ शरीर के योग्य पुद्गल-समूह!

३ - आहारक वर्गणा - योग शक्ति जन्य शरीर के योग्य पुद्गल - समूह!

४ - तैजस वर्गणा - विद्युत परमाणु समूह!

५५- क- गोम्मटसार, जीव काण्ड गाथा -६०२! नेमिचन्दजी सिद्धान्त चक्रवर्ती।
ख- नियमसार गाथा -२१-२४ आचार्य कुन्दकुन्द!

५६ गोम्मटसार, जीव काण्ड -५९३, ५९४!

५७ गोम्मट सार जीव काण्ड ५९५!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५- कार्मण वर्गणा -जीवों सत् व असत् क्रिया के प्रतिफल में बनने वाला पुद्गल समूह!

६- श्वासोच्छ्वास वर्गणा-आन प्रान योग्य पुद्गल समूह!

७ - भाषा वर्गणा -भाषा के योग्य पुद्गल समूह!

८ - मनोवर्गणा -चिन्तन में सहायक बनने वाला पुद्गल समूह!

प्रथम की चार वर्गणाएं अष्ट स्पर्शी स्थूल स्कन्ध है। वे हल्की भारी, मृदु-कठोर भी होती है। कार्मण, भाषा और मन ये तीन वर्गणाएँ चतुःस्पर्शी सूक्ष्म स्कन्ध है। इन में केवल शीत, ऊष्ण, स्निग्ध, और रुक्ष ये चार ही स्पर्श होते हैं। गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये चार स्पर्श नहीं होते हैं। श्वासोच्छ्वास वर्गणा चतुःस्पर्शी और अष्ट-स्पर्शी दोनों प्रकार के होते हैं।

पुद्गल द्रव्य की संख्या, क्या परमाणु और क्या स्कन्ध, सभी के रूप में अनन्त हैं। एक पुद्गल, दूसरे पुद्गल से स्पर्श, रस आदि किसी न किसी कारण से भिन्न या असमान भी हो सकता है। अतएव हम कह सकते हैं कि पुद्गल भी अनन्त है। [५८]

प्रत्येक द्रव्य का अपना कार्य होता है। इस कार्य को उपकार या उपग्रह भी कह सकते हैं। यह उपग्रह पुद्गल द्रव्य अपने स्वयं या अन्य पुद्गल द्रव्यों के प्रति तो करता ही है, जीव द्रव्य के प्रति भी करता है। उक्त द्रव्य जीव-द्रव्य का उपग्रह भी अनेक रूपों में करता है। वह जीव के अनुसार कभी शरीर तो, कभी मन, कभी वचन तो ,कभी श्वासोच्छ्वास के रूप में अपने स्वयं का परिणमन करता हुआ, उस परिणमन के माध्यम से जीव द्रव्य का उपग्रह करता रहता [५९] है। सुख-दुःख, जीवन और मरण के रूप में भी पुद्गल द्रव्य, जीव द्रव्य का उपग्रह करता है। [६०] पुद्गल द्रव्य के द्वारा जीव द्रव्य के उपग्रह का यह अर्थ कदापि नहीं है कि पुद्गल द्रव्य की जीव द्रव्य में कोई प्रक्रिया या परिणमन किया कराया जाता है। इस का अर्थ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, केवल यही है कि जीव द्रव्य का परिणान जीव द्रव्य में पुद्गल द्रव्य का परिणान पुद्गल द्रव्य में होता है लेकिन संयोगवश दोनों के परिणमनों में, स्वभावतः, ऐसी कुछ समानता अथवा एक रूपता बन पड़ती है कि हम जीव द्रव्य को लगता है कि यह परिणमन हम में जीव द्रव्य हो रहा है। वास्तव में ऐसा नहीं है। जीव द्रव्य का परिणमन उसके अपने उपादान या अन्तरंग कारण पर निर्भर है। पुद्गल द्रव्य तो केवल निमित्त हैं, और बाह्य कारण अवश्य है।

किसी भी द्रव्य का स्वरूप ही यह है कि उस में गुण और पर्याय हों, पुद्गलों के गुणों का विश्लेषण हो चुका है, पर्यायों के विषय में विचारणा यहाँ की जा रही है। यों तो, पुद्गल द्रव्य के अन्य द्रव्यों की भांति अनन्त पर्याय हैं, तथापि कुछ प्रमुख पर्यायों की चर्चा यहाँ की जाती है, जो इस प्रकार हैं।

---

५८ भगवती सूत्र -२!१!

५९. भगवती सूत्र -श. १३, उद्दे १४ सू. ४८१!

६० तत्त्वार्थ सूत्र -अ. ५, सू. २०!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमाणु स्कन्ध रूप में परिणत होते हैं। तब उन की दस अवस्थाएँ हैं, कार्य हैं, उन के नाम इस प्रकार हैं। [६१]

१ - शब्द!	६ भेद!
२ - बन्ध!	७ - अन्धकार!
३ - सूक्ष्म!	८ - छाया!
४ - स्थूल!	९ - आतप!
५ - संस्थान!	१० - उद्योत!

१ - शब्द - एक स्कन्ध के साथ दूसरे स्कन्ध के टकराने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है। वह शब्द है। [६२] संक्षेप में शब्दों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है। भाषात्मक, अभाषात्मक और मिश्र। विस्तार से, शब्द के मूलतः दो भेद होते हैं और दोनों के दो-दो प्रभेद तथा द्वितीय भेद के प्रथम प्रभेद के भी चार प्रभेद होते हैं। [६३]

भाषात्मक - इस वर्ग में मानव और पशु-पक्षियों आदि की ध्वनियाँ आतीं हैं। इस के दो प्रकार हैं।

अक्षरात्मक - ऐसी ध्वनियाँ इस वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। जो अक्षरबद्ध की जा सकें, लिखी जा सके।

अनक्षरात्मक - इस वर्ग में रोने-चिल्लाने, खांसने, फुसफुसाने आदि की तथा पशु-पक्षियों की ध्वनियाँ आती हैं, इन्हें अक्षर बद्ध नहीं किया जा सकता।

अभाषात्मक - शब्द के इस वर्ग में प्रकृतिजन्य और वाद्ययन्त्रों से उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ सम्मिलित हैं। इस के भी दो वर्ग हैं -

१ - प्रायोगिक अभाषात्मक!

२ - वैस्रासिक अभाषात्मक।

वाद्ययन्त्रों से उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ प्रायोगिक हैं। यह प्रायोगिक शब्द चार प्रकार का है।

तत वर्ग में वे ध्वनियाँ आती हैं, जो चर्म तनन आदि झिल्लियाँ के कम्पन से उत्पन्न होती है। तबला, ढोलक, भेरी आदि से ऐसे शब्द उत्पन्न होते हैं।

वितत शब्द वीणा आदि यन्त्र-यन्त्र में, तन्त्री के कम्पन से उत्पन्न होते हैं।

धन शब्द वे हैं, जो ताल, घण्टा आदि धन वस्तुओं के अभिघात से उत्पन्न हों,

---

६१ क- उत्तराध्ययन सूत्र -अ. २८ गा. १२-१३!
ख- तत्त्वार्थ सूत्र -अ. ५ सू. २४
ग- द्रव्य संग्रह, गाथा -१६!

६२ पंचास्तिकाय -गाथा -७९!

६३ तत्त्वार्थ राजवार्तिक अ. ५ सू. २४!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौषिर वर्ग में वे शब्द आते हैं। जो बांस, शंख, आदि में वायु-प्रतर के कम्पन से उत्पन्न [६४] हो।

वैस्रसिक -मेघ गर्जन आदि प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होने वाले शब्द वैस्रसिक कहलाते हैं।

जैन दर्शन में शब्द को केवल पौद्गलिक कहकर ही, विश्राम नहीं लिया, किन्तु उस की [६५] उत्पत्ति, शीघ्रगति, [६६], लोकव्यापित्व [६७] स्थायित्व [६८] आदि विभिन्न पहलुओं पर गम्भीर रूप से विचार किया [६९] है। शब्द पुद्गल स्कन्धों के संघात और भेद से उत्पन्न होता है। वक्ता बोलने के पूर्व भाषा परमाणुओं को ग्रहण करता है। भाषा के रूप में उन का परिणमन करता है। तीसरी अवस्था "उत्सर्जन" है। उत्सर्जन के द्वारा बाहर निकले हुए भाषा-पुद्गल आकाश में फैलते हैं। वक्ता का प्रयत्न यदि मन्द है तो वे पुद्गल अभिन्न रहकर जल-तरंग-न्याय" से असंख्य योजन तक फैल कर शक्तिहीन हो जाते हैं। और वक्ता का प्रयत्न तीव्र होता है। तो वे भिन्न होकर दूसरे असंख्य स्कन्धों को ग्रहण करते करते अति सूक्ष्म काल में लोकान्त तक चले जाते हैं। हम जो सुनते हैं, वह वक्ता का मूल शब्द नहीं सुन पाते। वक्ता का शब्द -श्रेणियों-आकाश प्रदेश की पंक्तियों में फैलता है। ये श्रेणियाँ वक्ता के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊँचे व नीचे छहों दिशाओं में है। हम शब्द की समश्रेणी में होते हैं। तो मिश्र शब्द सुनते हैं अर्थात् वक्ता द्वारा उच्चारित शब्द द्रव्यों और उन के द्वारा वासित शब्द-द्रव्यों को सुनते हैं। यदि हम विश्रेणी अर्थात् विदिशा में होते हैं। तो केवल वासित शब्द ही सुन पाते [७०] हैं। मिश्र शब्द नहीं सुनते हैं।

२ - बन्ध - बन्ध शब्द का अर्थ है बन्धना। जुड़ना, मिलना, संयुक्त होना। दो या दो से अधिक परमाणुओं का भी बन्ध हो सकता है। और दो या दो से अधिक स्कन्धों का भी होता है। इसी तरह एक या एक से अधिक परमाणुओं का एक या एक से अधिक स्कन्धों के साथ भी बन्ध होता है। पुद्गल-परमाणुओं अर्थात् कार्मण वर्गणाओं का जीवद्रव्य के साथ भी बन्ध होता है।

बन्ध की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि उस का विघटन या खण्डन या अन्त अवश्यम्भावी है। क्योंकि जिस का प्रारम्भ होता है। उस का अन्त भी अवश्यभेव होता है। एक नियम यह भी है कि जिन परमाणुओं या स्कन्धों अथवा स्कन्ध परमाणुओं या द्रव्यों का परस्पर बन्ध होता है। वे परस्पर सम्बद्ध रह कर भी अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के साथ क्षीर और नीर की भांति अथवा रासायनिक प्रतिक्रिया से सम्बद्ध होकर भी अपनी पृथक् सत्ता नहीं खो सकता। उस के परमाणु कितने ही रूपान्तारिक हो जाते हैं। तथापि उन का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व सुरक्षित रहता है।

---

६४ सर्वार्थसिद्धि -अ. ५ सू- २४!

६५ स्थानांग सूत्र स्था. २ उद्दे. ३!

६६ प्रज्ञापना सूत्र पद. -११!

६७ प्रज्ञापना सूत्र पद -११!

६८ प्रज्ञापना पद -११

६९ जम्बद्वीप प्रज्ञप्ति -५ अ!

७० प्रज्ञापना सूत्र पद -११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्ध का कारण -पुद्गल का बन्ध जीव के साथ भी होता है और इस के कई कारण भी हैं। यह तो अति स्पष्ट है कि पुद्गल द्रव्य सक्रिय है और जो सक्रिय होता है, उस का टूटते-फूटते रहना, जुड़ते मिलते रहना स्भावाविक है। उस में कोई न कोई कारम निमित्त के रूप में अवश्य होता है। उदाहरणार्थ -मिट्टी के अनेक कणों का बन्ध होने पर घड़ा बनता है। इस में कुम्भकार निमित्त कारण है।

बन्ध की प्रक्रिया वास्तव में अत्यन्त ही सूक्ष्म है। परमाणु से स्कन्ध, स्कन्ध से परमाणु और स्कन्ध से स्कन्ध किस प्रकार बनते हैं। इस विषय में मुख्यतः सात तथ्य हैं, वे ये हैं -

१ - स्कन्धों की उत्पत्ति कभी भेद से, कभी संघात से और कभी भेद-संघात से होती है। स्कन्धों का विघटन अर्थात् कुछ परमाणुओं का एक स्कन्ध से विच्छिन्न होकर दूसरे स्कन्ध में मिल जाना "भेद" कहलाता है। दो स्कन्धों का संघटन या संयोग हो जाना संघात है। और इन दोनों प्रक्रियाओं का एक साथ हो जाने भेद संघात [७१] है।

२ - अणु की उत्पत्ति केवल भेद-प्रक्रिया से ही सम्भव [७२] है।

३ - पुद्गल में पाये जाने वाले स्निग्ध और रुक्ष नामक दो गुणों के कारण ही यह प्रक्रिया संभव [७३] है।

४ - जिन परमाणुओं का स्निग्ध या रुक्ष गुण जघन्य अर्थात् न्यूनतम शक्ति स्तर पर हो उन का परस्पर बन्ध नहीं होता है।

५ - जिन परमाणुओं या स्कन्धों में स्निग्ध या रुक्ष गुण समान मात्रा में अर्थात् समशक्ति स्तर पर हो, उनका भी परस्पर बन्ध नहीं होता है।

६ - लेकिन उन परमाणुओं का बन्ध अवश्य होता है। जिनसे स्निग्ध और रुक्ष गुणों की संख्या में दो एकांकों का अन्तर होता है। जैसे चार स्निग्ध गुणयुक्त स्कन्ध का यह स्निग्ध गुण युक्त स्कन्ध के साथ बन्ध सम्भव है, अथवा छह रुक्ष गुण युक्त स्कन्ध से बन्ध संभव है।

७ - बन्ध की प्रक्रिया में संघात से उत्पन्न स्निग्धता अथवा रुक्षता में से जो भी गुण अधिक परिमाण में होता है। नवीन स्कन्ध उसी गुण रूप में परिणत होता है। उदाहरण के लिये एक स्कन्ध, पन्द्रह स्निग्ध गुण युक्त स्कन्ध और तेरह रुक्ष गुण स्कन्ध से बने तो वह नवीन स्कन्ध स्निग्ध गुण रूप होगा।

जीव और पुद्गल के पारस्परिक बन्ध की एक विशिष्ट परिभाषा है। जीव कषाय सहित होने के कारण जीव कार्मण वर्गणा के पुद्गल को ग्रहण करता है। इसी ग्रहण का नाम बन्ध है। [७४] बन्ध या

---

७१ स्थानांग सूत्र स्थान -२ उदे -३ सू- ८२!

७२ तत्त्वार्थ सुत्र अ. ५ सू. २७!

७३ प्रज्ञापना सूत्र, परिणामपद १३ सूत्र -१८५!

७४ तत्त्वार्थ सूत्र अ. ८ सू. २!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोग को प्राप्त होने वाली कार्मण वर्गणाओं में अनेक प्रकार का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध है, यह आठ प्रकार का होता [७५] है। उन के नाम ये हैं।

१ - ज्ञानावरण कर्म!	५ - आयु कर्म!
२ - दर्शनावरण कर्म!	६ - नाम कर्म!
३ - वेदनीय कर्म!	७ - गोत्र कर्म!
४ - मोहनीय कर्म!	८ - अन्तराय कर्म!

इन कर्मों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय ये कर्म घाती हैं, और शेष कर्म अघाती [७६] हैं। कर्म संस्कार मात्र ही नहीं है, किन्तु एक वस्तुभूत पुद्गल पदार्थ है।

३ - सूक्ष्म - इस का अर्थ है छोटापन, यह दो प्रकार का है -अन्त्य सूक्ष्म और आपेक्षिक सूक्ष्म

४ - स्थूल - इस का अर्थ है बड़ापन। इस के दो भेद हैं। अन्त्य स्थूल, जो महास्कन्ध में पाया जाता है। आपेक्षित स्थूल जो छोटी बड़ी वस्तुएँ हैं।

५ - संस्थान - इस का अर्थ है -आकार, रचना विशेष इसके दो भेद हैं -इत्थं संस्थान, अनित्थं संस्थान।

६ - भेद - इस का अर्थ "खण्ड" है। स्कन्धों का विघटन "भेद" कहलाता है।

७ - तम - जो देखने में बाधक हो और प्रकाश का विरोधी हो। [७७]

८ - छाया - प्रकाश पर आवरण पड़ने पर छाया उत्पन्न होती है, यह प्रकाश का अभाव रूप नहीं है।

९ - आतप - सूर्य आदि के निमित्त से होने वाले ऊष्ण प्रकाश को आतप कहते हैं।

१० - उद्योत - चन्द्रमा, जुगनू आदि के शीत प्रकाश को उद्योत कहते हैं।

आतप और उद्योत में दोनों, प्रकाश के विभाग हैं। उन्हीं के रूप में उस का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन हुआ है।

सारपूर्ण भाषा में यही कहा जा सकता है कि जैन दर्शन में परमाणु विज्ञान और पदार्थ-दर्शन निश्चल एवं समग्र निरूपण है। अति स्पष्ट है कि उक्त दर्शन में आध्यात्मिक विवेचन जिस सीमा तक पहुंचा हुआ है, उसी प्रकार पदार्थ विश्लेषण भी पहुंच चुका है। जिस की सर्वांगपूर्ण विचारणा समय और श्रम साध्य अवश्य है। मर्यादित पृष्ठों के कारण उक्त निबन्ध में पुद्गलास्तिकाय का दिशा-निर्देश के रूप में आलेखन किया गया है, प्रतिपाद्य विषय के बहुविध आयामों का संस्पर्श भी नहीं किया है। तथापि इसे अगाध-अपार महासागर में से एक बून्द का ग्रहण करने के लिये किये गये चंचुपात की भांति मान कर विशेष अध्ययन की ओर जिज्ञासु जन अग्रसर होंगे। यही अन्तहृदय की आकांक्षा है, मंगल मनीषा है।

* * * * *

---

७५ क- उत्तराध्ययन सूत्र -अ. ३३ गा. २-३! ख- स्थानांग सूत्र- ८/३/५९६! ग- प्रज्ञापना सूत्र २३/१ घ- भगवती सूत्र श. ६ उद्दे. ९! ङ- तत्त्वार्थ सूत्र -८/५! च- प्रथम कर्म ग्रन्थ गाथा -३! छ- पंच संग्रह -२/२!

७६ क- पंचाध्यायी २/९९८, २९९ ख- गोस्मटसार जीवकाण्ड -९!

७७ सर्वार्थसिद्धि अ. ५ सू. २४!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org